द्वारा लिखित स्व. डॉ. विजय लाल
मंगलवार, 30 अगस्त 2011 12:00 - अंतिम अद्यतन गुरुवार, 01 सितम्बर 2011 12:12

“[illegible]: [illegible], [illegible], [illegible]” ([illegible] 2:13)

यिर्मयाह 2:13 में परमेश्वर कहता है “उन्होंने मुझ बहते जल के सोते को त्याग दिया है और उन्होंने हौद बना लिए हैं। ऐसे हौद जो टूट गये हैं, और जिनमें जल नहीं रह सकता”।

बहते जल का सोता परमेश्वर है। हौद, हमने बना लिये है।

असीम को त्याग दिया है।

छोटे-छोटे ईश्वर, भगवान निर्मित कर लिये हैं, नाम दे दिये हैं। अपने हाथों से निर्मित भगवानों को हम पूजने लगे हैं और हम भूल गये हैं कि ईश्वर ने हमारी रचना की है, हम अपने ईश्वर की रचना करते हैं। हम भूल गये हैं कि ईश्वर ने हमें अपने स्वरूप में बनाया है। हम ईश्वर को अपने स्वरूप में अपनी इच्छानुसार बनाते हैं।

“उत्पत्ति” नाम पुस्तक में वर्णन है - जब परमेश्वर ने मूसा को जलती झाड़ी में दर्शन दिये और सम्राट फ़िरौन के पास जाने का आदेश दिया कि जाकर इस्त्राएलियों को गुलामी से छुड़ाये तो मूसा ने कहा परमेश्वर से - “यदि इस्त्राएली पूछेंगे मुझसे कि जिस परमेश्वर ने तुझे भेजा है, उसका नाम क्या है, तो मैं क्या कहूंगा?

परमेश्वर ने कहा - मूसा से “मैं जो हूं वो हूं”

आई.एम.देट आई.एम. “मैं हूं ...... मेरा अस्तित्व है ..... ये बस

होना - बस है।

द्वारा लिखित स्व. डॉ. विजय लाल
मंगलवार, 30 अगस्त 2011 12:00 - अंतिम अद्यतन गुरुवार, 01 सितम्बर 2011 12:12

नाम की सीमा आवश्यक नहीं ..... जिसके अस्तित्व की सीमा नहीं ..... उसे नाम की सीमाओं में क्या बांधोगे मूसा

पर हमने सीमाओं में बंधे, सीमाओं में कैद, ईश्वर निर्मित कर ली है, हौद बना दिये है,

कुछ के लिये –

ईश्वर की उपासना का अर्थ - मात्र देवालय जाना, मंदिर जाना, गिरजे जाना रह गया है। जीवन हमारा कैसा ही हो, चाहे नैतिकता का हमारे जीवन में कोई स्थान न हो, धार्मिकता का कोई ध्यान न हो। ईर्ष्या, क्रोध, जलन, व्यभिचार, लालच, दुर्भावना से आत्मा भरपूर हो, पर हम मंदिर जाते है, गिरजे जाते है, स्वयं को धार्मिक

समझते है मानों हमारे ईश्वर मंदिरो में, गिरजा घरों में सीमित हों, कैद हों। क्या ईश्वर की असीमता को, व्यापकता को, विभाजित किया जा सकता है? क्या ईश्वर मंदिर में है, मंदिर के बाहर नहीं? क्या हमारा जीवन मंदिर के भीतर पवित्र होना चाहिये, मंदिर के बाहर नहीं?

परमेश्वर यशायाह 1:12-14 में कहता है –

"जब तुम अपने मुंह मुझे दिखाने के लिये आते हो, तब यह कौन चाहता है कि तुम मेरे आंगन को पांवों से रौंदो? व्यर्थ अन्नबलि फिर मत लाओ, धूप से मुझे घृणा है, नये चांद और विश्राम दिन का मानना और सभाओं का प्रचार करना, ये मुझे बुरा लगता है, तुम्हारे नये चांदों और नियत पर्वों के मानने से, मै बैर रखता हूं"।

यदि हम मंदिर में मात्र इसलिये जाते है कि औपचारिकता पूरी करें, अनुष्ठान पूरे करें, पर्व मनायें, रिवाज पूरे करें, तो परमेश्वर नहीं चाहता कि हम उसके आंगन को अपने पांव से रौंदे। अनुष्ठानों, पर्वों, रिवाजों में सीमित ईश्वर को पूजने या दि मंदिर में जाते है तो यह मात्र मंदिर के आंगन को पांवों से रौंदने जैसी निरर्थक प्रक्रिया है।

ईश्वर के प्रति सीमितता की धारणा, उसका अपमान है, और वह उसके विरोध में है।

यीशु जानते थे कि मात्र मंत्र उच्चारित करना, श्लोकों को कंठस्थ करना, भजन गाना, धर्म नहीं है।

द्वारा लिखित स्व. डॉ. विजय लाल
मंगलवार, 30 अगस्त 2011 12:00 - अंतिम अद्यतन गुरुवार, 01 सितम्बर 2011 12:12

उन्होंने कहा "जो मुझे हे प्रभु, हे प्रभु पुकारते हैं वे स्वर्ग के राज्य में कदापि प्रवेश न करेंगे, पर वे जो मेरी इच्छा पर चलते हैं"।

"अनेक ऐसे लोग हैं जो होठों से तो मेरा आदर करते हैं पर उनका हृदय मुझ से दूर है"। उनका आक्रोश था उन पर जिन्होंने हौद बना लिया है। ईश्वर को धार्मिक अनुष्ठानों और आडम्बर में सीमित कर दिया है और मूर्तियों और आडम्बरों की भीड़ में ईश्वर खो गया है—

उनका आक्रोश था — उन पर जिनके बाह्य जीवन से धार्मिकता का आडम्बर तो प्रदर्शित होता है पर आंतरिक जीवन में अनैतिकता का अम्बार है। उन्होंने ऐसे धार्मिक अगुवों से कहा—

"तुम्हारा जीवन चूना पुती उज्जवल सफ़ेद कब्रों के सदृश्य है जो ऊपर से तो सुन्दर स्वच्छ प्रतीत होती हैं परन्तु भीतर सब प्रकार की अपवित्रता और दुर्गन्ध से परिपूर्ण है"।

हम बहते सोते ईश्वर के स्थान पर हौद तब भी बना लेते हैं, जब हम मात्र आराधना, प्रार्थना और स्तुति को ही धर्म या मसीहियत मान लेते हैं।

कितने ऐसे मसीही हैं जो घण्टों प्रार्थना में बिताते हैं पर पड़ोसी से प्रेम नहीं, हृदय में क्षमा नहीं, क्रोध पर अधिकार नहीं, परिवार में शांति नहीं। कितने ऐसे लोग हैं जो उत्साह से गवाही देते हैं कि प्रभु ने उन्हें कैसे बचाया। किस दिन, किस तारीख, कितने समय पर, उन्हें उद्धार मिला, पर वह अपने काम में विश्वास योग्य नहीं, अपनी

नौकरी में ठीक समय पर उपस्थिति नहीं होते, ईमानदारी से काम नहीं करते, झूठी अर्जियां लिख कर छुट्टियां ले लेते हैं।

कितने ऐसे विद्यार्थी हैं जो मान्य परिभाषा के अनुसार धार्मिक हैं, पर अपने अध्ययन के प्रति उदासीन हैं, ईश्वर ने जो बुद्धि दी है, उचित वातावरण दिया है, समय दिया है, उसका उपयोग अपने जीवन को समृद्ध करने में नहीं करते। उनका ईश्वर बहुत सीमित है, उनकी मसीहियत प्रार्थना करने, गवाही देने तक सीमित है।

ईश्वर पूजा-अर्चना तक सीमित नहीं, स्तुति गान तक सीमित नहीं, उसमें हमारी आस्था और विश्वास जीवन के हर क्षेत्र में, हर आयाम में, हर पहलू में, अभिव्यक्त होना चाहिये। हमारे आचार में, हमारे व्यवहार में, हमारे कार्य में, हमारी दिनचार्या में, हमारे अध्ययन में, हमारे व्यवसाय में, मंदिर में, मंदिर के बाहर हमारे कार्य क्षेत्र में,

द्वारा लिखित स्व. डॉ. विजय लाल
मंगलवार, 30 अगस्त 2011 12:00 - अंतिम अद्यतन गुरुवार, 01 सितम्बर 2011 12:12

खेल के मैदान में, हमारे अन्तर्संबंधों में, पारिवारिक संबंधों में, पत्नी के साथ संबंधों में, पति के साथ संबंधों में, बच्चों के साथ संबंधों में।

इसलिये तो यीशु ने कहा - यदि तू अपनी भेंट लेकर मंदिर की वेदी पर पहुंचे और वहां तुझे स्मरण आ जाये कि तेरे भाई के मन में तेरे विरूद्ध दुर्भावना है तो भेंट वहीं छोड़ दें, जाकर पहले भाई से मेल कर, तब भेंट चढ़ाना, तब तेरी भेंट स्वीकार होगी।

ईश्वर भेंट स्वीकार कर प्रसन्न होने वाले अफसर से या अधिकारी से कहीं वृहद और विशाल है, महान है। उसका दायरा जीवन का हर क्षेत्र है, वह मात्र मंदिर को मात्र आलोकित नहीं करता, उससे सम्पर्क हो जाये तो वह जीवन के हर कोने को आलोकित कर देता, उज्जवल कर देता। जो महान है, विशाल है, समग्र है, विराट है, उसे मात्र हमारी क्षुद्र भेंट नहीं चाहिए, वह चाहता है सम्पूर्ण समर्पण, सम्पूर्ण क्रांति, सम्पूर्ण जीवन। वह चाहता है, जीवन बदल जाये, जीवन जीने की दृष्टि बदल जाये।

जीवन छोटी-छोटी बातों से बना होता है, ये सारी छोटी-छोटी बातें मिलकर ईश्वर में हमारी आस्था को प्रकट करती है। बहुत से लोग सोचते है, हम अच्छे हैं, हमने कोई हत्या नहीं की, यीशु कहते है, हत्या तो नहीं की, पर क्षण-क्षण में क्रोध तो करते हो।

हम सोचते हैं, व्यभिचार तो नहीं किया, यीशु कहते है कुदृष्टि से देखा तो है, परिवर्तन पूर्ण होना चाहिए, समर्पण सम्पूर्ण होना चाहिए। बड़ी बात में होना चाहिए, छोटी-छोटी बातों में होना चाहिए, हर कोने में होना चाहिए।

भक्ति व्यर्थ है यदि पूजा गृह से निकलकर दिन भर हम घूस लेने में व्यस्त हो जाते है, मंदिर में ट्यूब लाइट लगवाना व्यर्थ है यदि वह भेंट उस कमाई से ली गई हो जो अवैध है।

बाइबिल पढ़ना व्यर्थ है यदि ईश्वर के दिये समय का हम दुरूपयोग करते हैं। हमारी पूजा व्यर्थ है, यदि भाई को हमने हृदय से क्षमा नहीं किया।

एकबार प्रभु यीशु मसीह अपने तीन प्रिय शिष्यों के साथ एक पर्वत शिखर पर गये। वहां उनका स्वरूप बदल गया, चेहरा और वस्त्र सूर्य के सदृश्य चमकने लगे। बड़ा ऐश्वर्य पूर्ण, महिमा पूर्ण, दृश्य रहा होगा। असीम शांति से पूर्ण अनुभव रहा होगा, शिष्य पितरस को लगा कि काश यही पर्वत शिखर के स्वर्गीय अध्यात्मिक वातावरण में ही रह जायें, वो कहने लगा – "प्रभु हमारा यहां रहना ही भला है, यहीं रह जायें हम।"

पर ये संभव नहीं था, परमात्मा का सानिध्य कितना ही सुखद हो पर यदि उसके सानिध्य की प्रेरणा की विस्तृत अभिव्यक्ति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नहीं होती तो परमात्मा का अनुभव अपूर्ण है। यीशु शिष्यों के साथ पर्वत शिखर से उतर पड़े। नीचे संसार की भीड़ एकत्रित थी; जिसमें निर्धन, अंधे, कोढ़ी, बीमार, अपाहिज, अपंग सभी की सेवा में यीशु संलग्न हो गये। इनकी सेवा में ईश्वर की वास्तविक आराधना संभव है। यही आदर्श उन्होंने प्रस्तुत किया, शिष्यों से कहा कि – "तुमने जो इन छोटे से छोटों के लिये किया है वह मेरे लिये किया है।"

द्वारा लिखित स्□व. डॉ. विजय लाल
मंगलवार, 30 अगस्त 2011 12:00 - अंतिम अद्यतन गुरुवार, 01 सितम्बर 2011 12:12

ईश्□वर विराट है, समग्र है, विशाल है, वृहद है, □क सोते के समान□ जब हम उसके समग्रता की उपेक्षा कर मात्र □क खण्□ड अपनाते हैं, उसे सीमित करते हैं, हौद बनाते हैं□ वचन हमें बताता है कि हौद टूट जाते हैं हौद का टूटना अवश्□यम् भावी है□ परमेश्□वर का स्□थान जो लेगा वह टूटेगा ही□ आज तक ऐसे हौद नहीं बने जो टूटे ना□ जो परमेश्□वर का स्□थान लेता है उसकी सीमा□ं है□ केवल असीम परमेश्□वर उसका असीम विचार उसकी असीम धारणा, उसका समग्र स्□वरूप, समग्र समर्पण मांगता है□ जीवन के हर क्षेत्र से, हर पहलू से, हर आयाम से, हर प्रतिक्रिया से, हर सम्□बन्□ध से, हर शब्□द से, उसकी अभिव्□यक्ति होना चाहि□□ वह जीवित परमेश्□वर है, वह बहता हुआ सोता है, उसको हम हौद न बना ले□